वेदान्त रहस्य

लेखक

श्री ब्रह्मलीन नागभूषण शिवयोगी

शिवानुभवाश्रम
मु. मुचळंब-पो. कल्याण-जिल्हा बेंदर

ता. ६ फरवरी १९५२ मूल्य ॥)
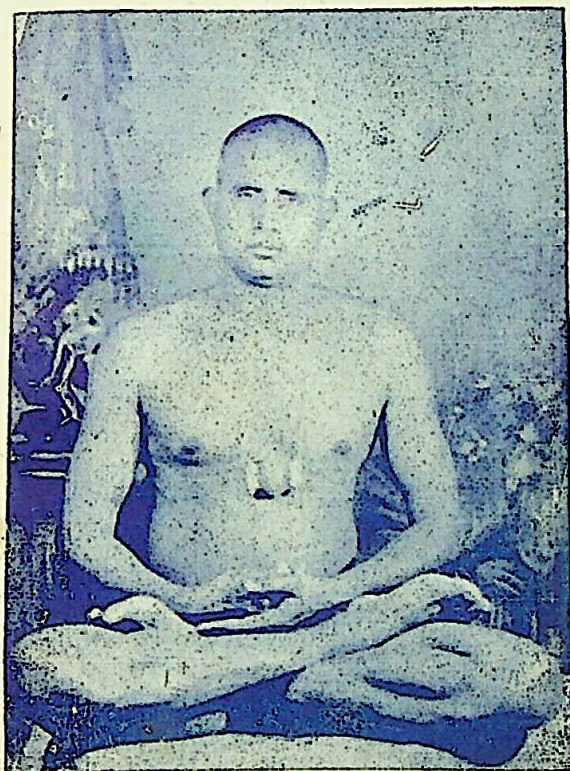
श्री ब्रह्मलीन नागभूषण शिवयोगी

वेदान्त रहस्य

॥ तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा ॥

॥ न गर्जति महा शक्तिर्यावद्वेदान्त केशरी ॥

श्री ब्रह्मलीन नागभूषण शिवयोगी, प्रणीत मुमुक्षु जनोंके हितार्थ सुलभ उदाहरणों द्वारा वेदान्त शास्त्रका सिद्धांत प्रतिपादन किया है. स्वामीजीका जीवन चरित्र परमार्थ शिक्षावली ग्रंथमे सविस्तर से लिखा है.

प्रकाशक

आपकी वि०

श्रीयुत मडिवाळप्पा नागप्पा भुसे बा.

प्रकाशक के दो शब्द

निवेदन यह है कि

परमार्थ शिक्षावली ग्रन्थ हिन्दी और कनडी में छपा है- और "निसर्ग जीवन" नामक ग्रन्थ थोडे दिन में प्रकाशित होता है- इस ग्रन्थ में रोगों का लक्षण, और चिकित्सा, निसर्ग रीति से परहेज, और आसन, प्राणायामादिक विधि लिखा है- स्वामीजीने वहुत रोगों का इलाज करके अपने अनुभव से लिखा है- प्रत्येक रोगी इस विधि से छः माहिने मे योगी वन जाता है-मैं ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ स्वामीजी की आयु आरोग्य वढ कर सदा ऐसे शुभ कार्य होते रहें-इति ।

वेदान्त रहस्य

विषय सूचि.

॥ ॐ ॥

१ प्रस्तावना

उत्तिष्ठित जागृत प्राप्य वरान्नि बोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥

अर्थ– उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषोंके पास जाकर, उस आत्म ज्ञानको प्राप्त करो-ब्रह्मज्ञानी उस मार्ग को छुरेकी तीक्ष्ण धारके समान दुर्गम बतलाते हैं इस लिये, जब तक मृत्यु दूर है वृद्धावस्था नहीं आई है, और रोगसे शरीर जर्जर नहीं होगया है, उसके पहले ही आत्म कल्याणका काम कर लेना चाहिये, नहीं तो पीछेसे पछताना पडेगा जीवनका प्रधान कर्तव्य, स्वरूपका साक्षात्कार ही है क्योंकि स्वरूप ज्ञानके विना परमानंद की प्राप्ति और शोक मोहकी सर्वथा निवृत्ति कदापि सम्भव नहीं है ज्ञानी पुरुष के लिये जिस स्थितिमें सम्पूर्ण संसार आत्मा ही हो जाता है, उस स्थितिमें शोक और मोह कैसे सम्भव है, आत्म ज्ञानके अनंतर कुछ भी ज्ञान शेष नहीं रहता-क्योंकि आत्म ज्ञानके शिवाय स्वर्गका एकछत्र साम्राज्य इन्द्रत्व प्राप्त होजाने पर भी जीवके कर्तव्य की इति श्री नहीं होती इतना ही क्यों दीनता पराधीनता और मूर्खता भी पल्ला नहीं छोडती-वस्तुतः आत्म साक्षात्कार ही समस्त कर्तव्योंको पूर्ण करनेके लिये पर्याप्त है, इस लिये साधक जनोंका विचार करनाही कर्तव्य है, हम जैसे विचारोंका सेवन करेंगे वैसे ही हो जायेंगे विचार ही हमारे भविष्य का निर्माण करते हैं. जिस प्रकार

अच्छा भोजन शरीर के लिये लाभकारी होता है. उसी प्रकार उत्तम विचार से मनके ऊपर उत्तम प्रभाव पडता है. इस लिये अपने बुरे या भले भविष्य के लिये हम स्वयं ही जवाबदार हैं (बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः) अच्छा जीवन का चरमलक्ष्य आनन्द ही है, संसार में जितने प्राणी हैं, वे सब एक आनन्द मात्र ही की खोजमें हैं, अतः सुखके लिये ही सारा प्रयत्न है, निज सुख पाने के लिये भोग की तरफ दौडता है, भोगों से अशान्ति पाकर फिर भी दुःखी होता है, कोई घृतकी धारा छोडकर अग्निको शान्त करना चाहते हैं, आज हमारी दशा ऐसी हो रही है जैसे किसी की सूई, घर में भूले गई और घर में प्रकाश न होने के कारण उसे ढूंढे बाजार में, हमे शान्ति पाने के लिये कहीं बाजार जानेकी आवश्यकता नहीं है जहाँ खोई है, उसे वहीं ढूंढना चाहिये, शान्ति का घर तो तुम्हारा मन हृदय ही है, तुम अज्ञानान्धकार के कारण उपलब्ध नहीं कर रहे हैं, ज्ञान दीपक जलाओ आनंद तुम्हें मिल जायगा अस्तु वेदान्त ग्रंथ संस्कृत में अनेक हैं, परन्तु व्याकरण न्याय शास्त्र आदि के अध्ययन विना वे समझ में नहीं आते, इसवास्ते मैंने वेदान्त रहस्य ग्रंथ बहुत सरल और सुन्दर किया है, सामान्य मुमुक्षु भी इस ग्रंथको पढ सकते हैं, और यह ग्रंथ ब्रह्मज्ञान द्वारा असार संसार से मुक्त करने वाला है, आशा है कि, मुमुक्षु जन इसे सादर गृहण करेंगे,

ॐ पूर्ण मदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

२ परापूजा

पूर्णस्याऽऽवाहनं कुत्र, सर्वाधारस्य चासनम् ।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च, शुद्धस्याचमनं कुतः ॥ १ ॥
निर्मलस्य कुतः स्नानं, वस्त्र विश्वोदरस्य च ।
निरालंबस्योपवीतं पुष्पं निर्वासनस्यं च ॥ २ ॥
निर्लेपस्य कुतो गंधो रम्यस्या भरणं कुतः ।
नित्य तृप्तस्य नैवेद्यस्तांबूलं च कुतो विभोः ॥ ३ ॥
प्रदक्षिणा ह्यनंतस्य, ह्यद्वयस्य कुतो नतिः ।
वेद वाक्यैरे वेद्यस्य, कुतः स्तोत्रं विधीयते ॥ ४ ॥
स्वयं प्रकाश मानस्य, कुतो नीराजन विभोः ।
अंतर्बहिश्च पूर्णस्य, कथ मुद्रासनं भवेत् ॥ ५ ॥
एवमेव परा पूजा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
एक बुद्ध्या तु देवेशे, विधेया ब्रह्मवित्त मैः ॥ ६ ॥

इति परा पूजा समाप्त

अर्थः—सबमें पूर्ण-सर्व व्यापक परमात्माका आवाहन (बुलाना) कहांसे हो ? यानी जो किसी स्थान पर हो, और किसी स्थान पर न हो-उसका आवाहन हो सकता है-परन्तु जो सभी स्थानों में परि पूर्ण व्यापक है उसका आवाहन कैसे हो सकता है ? नहीं हो सकता-तथा सर्वाधारको आसन कैसा अर्थात् बैठनेवाले के लिये आसन बैठन का

दिया जाता है, परन्तु परमात्मा न तो कभी बैठता है, एवं न कभी उठता है, जो उठने बैठने वाला होता है-वह सबका आधार नहीं हो सकता ? अतः सर्वाधार प्रभुको आसन किसका एवं कैसे दिया जाय-जो सर्वदा स्वच्छ और निर्मल है-उसके लिये पाद्य, और अर्घ्य की आवश्यकता क्या है ? जो सर्वदा शुद्ध है-उसे आचमनसे क्या प्रयोजन यानी आचमन शुद्धि के लिये दिया जाता है- जो कभी अशुद्ध ही नहीं, उसको आचमन क्या करेगा ? जो सर्वदा निर्मल है-उसको स्नान से क्या प्रयोजन ? यानी मल शुध्यर्थ स्नान कराया जाता है-जो मल रहित है उसको स्नान कराने से क्या लाभ ? कुछ नहीं, जिसके उदरमें तमाम विश्व निहित है, उसे वस्त्र से क्या मतलब ? यानी वस्त्र शरीर के आच्छादनार्थ होता है- जिसने तमाम ब्रह्माण्डको आच्छादित कर रखा है-उसके लिये वस्त्र कहांसे हो ? एवं कैसे हो ? जो गोत्र एवं वर्णसे रहित है, उसे यज्ञोपवीत (जनेऊ) के परिधानसे क्या लाभ ? कुछ भी नहीं-यानी जिसका ब्राह्मणादि वर्ण है, एवं वसिष्ठादि गोत्र है, उसका ही यज्ञोपवीत धारणमें अधिकार है-और जो सर्व अभिलाषा-ओंसे रहित है-उसको पुष्प सेवनसे क्या मतलब है।

निर्लेप के लिये गन्ध कैसा ? यानी अगरादिक गंध प्रसन्नताके लिये देता है-जिसमें अप्रसन्नताका लेश मात्र भी नहीं है-उसको गन्धसे क्या प्रयोजन ? जो नित्य तृप्ति है, उसको नैवद्य से क्या प्रयोजन ? यानी नैवेद्य तृप्तिके लिये होता है-सदा पूर्ण तृप्तिके लिये क्या ? जब परमात्मा अतृप्त ही नहीं तब नैवेद्य भी व्यर्थ ही है-और ताम्बूलसे मुख

शुद्ध होता है, जो सर्वदा शुद्ध पूर्ण है, उसको ताम्बूल से क्या प्रयोजन ? कुछ नहीं।

अनन्त की प्रदक्षिणा (चारों तरफ घूमना) किस प्रकार हो सकती है, यानी जिसका अन्त है और जिसके आस पास फिरने के लिये कुछ स्थान खाली है, जो छोटासा है, उसको प्रदक्षिणा हो सकती है-जिसका अन्त नहीं किन्तु जो व्यापक सर्वात्मा है, उसकी प्रदक्षिणा नहीं-हो सकती-जो अद्वय (द्वितीय रहित) को नमस्कार कैसे हो, यानी नमस्कार दूसरे को किया जाता है-परमात्मा एक है- इसलिये नमस्कार नहीं हो सकता-जो वेद वाक्यों से अवेद्य है, जाना नहीं जाता-उसकी स्तुति किस प्रकार हो ? अर्थात जो जाननेमें आता है, उसकी स्तुति हो सकती है-परमात्मा नाम, रूप, जाति, गुण, क्रियादिसे रहित है- इस लिये स्तुति का विषय कैसे हो सकता अर्थात् नहीं हो सकता स्वयं प्रकाश व्यापकतावका नीरांजन (दीपादिकोंसे आरती) कैसे यानी आने जाने के लिये एवं प्रकाशके लिये नीरांजन किया जाता है, जो न कभी आता है, न जाता है, एवं जिसके पास अन्धकार, अणु मात्र तक भी नहीं, उसे नीरांजन की क्या आवश्यकता ? बाहर और भीतर जो ठसाठस भरा हुआ है, उसका उद्वासन (विसर्जन) किस प्रकार हो, अर्थात् विसर्जन, परिच्छिन्न व्यक्ति का होता है, जो पूर्ण है, उसका विसर्जन कैसे ? अर्थात् नहीं, हो सकता-ब्रह्मवेता-ओंको एक (भेद भाव रहित) बुद्धिसे परमात्माकी इस प्रकार परा पूजा सब अवस्थाओंमें हमेशा करनी चाहिये ।

३ अधिकारी लक्षण

यह वेदान्त रहस्य ग्रन्थ श्रवण करने के लिंये अधिकारी प्रथम निष्काम कर्मसे अंतःकरण शुद्ध करके ध्यान योग द्वारा चित्त स्थिर करना चाहिये. तदनन्तर वेदान्त शास्त्र विषय नित्यानित्य वस्तु के विवेक से आदि लेकर चारों साधन करें संयुक्त और सम्यक श्रवग मनन अरू निदिध्यासनके अधिकारीको तत्त्वं पदके अर्थ ब्रह्म और आत्माके विवेचन पूर्वक महा वाक्य के अर्थ रूप मोक्ष होवै हैं- अस्तु- मंद बुद्धि अधिकारिको किसी भी प्रतिबंध करि महा वाक्यों के अर्थकूं विषय करने हारी यथार्थ अनुभव रूप अपरोक्ष प्रमाकी अनुत्पत्तिके हुये तिस अपरोक्ष प्रमाकी उत्पत्ति द्वारा मोक्ष फल वाली उपासनाके दिखलाता हूँ -

॥ अनु भूतेरभावेऽपि ब्रह्मास्मी त्येव चिंत्यताम ॥

॥ अप्यसत्प्राप्यते ध्यानान्नित्याप्तं ब्रह्म किं पुनः ॥

अर्थ—कीटकूं भ्रमर भावकी न्याई उपासककूं पूर्व अविद्य मान भी देव भाव आदिक ध्यानतै प्राप्त होवै है तब स्वरूप होनैकरि नित्य प्राप्त जो सर्वात्मक ब्रह्म है - सो ध्यानतै प्राप्त होवै है - या मैं क्या कहना है -

जैसे कुंतीके पुत्र कर्ण विषै राधा पुत्र (दास) भावकी प्रतीति भई है - तैसे निर्विकार परमात्मा विषै अविद्याकरि जीवभाव की प्रतीति होवै है - यतै सर्वकूं ब्रह्मरूप होने तै वास्तव जन्मादिक संसारका अभाव ही है - तथापि अज्ञानकृत जीव भावकरि अज्ञानिकूं अपने आप विषै

जन्मादिक की प्रतीति होवै है. और सूर्य के वचन से कर्णकूं कुंती पुत्रताके ज्ञानकरि राधा पुत्रताकी निवृत्ति की न्याई, अज्ञानी कूं गुरुपदेशतै अपने ब्रह्म भावके ज्ञानकरि - स्वावरक अविद्या अंशकी निवृत्ति द्वारा जन्मादिक संसारकी निवृत्ति होवै है -

४ संसार मोहसे जीवन व्यर्थ

बालस्ता वत्क्रीडा सक्त स्तरूण स्ताव तरूणी रक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्ता मग्नः पर ब्रह्मणि कोऽपिन लग्नः ॥
भज गोविन्दं मूढ मते ॥

हे मूढ मते, जब तू बालक था तब खेल, कूदमें ही लगा रहा-यानी खेल कूदमें ही अपनी बाल्यावस्था फजूल खतम कर दी, जब तू जवान हुआ, तब तू जवान स्त्री की सेवा में ही आसक्त बना रहा जब तू वृद्ध होगया, तब अनेक चिन्ताओंमे डूबा हुआ है, परन्तु, कभी तूने उस परब्रह्मसे परम प्रेम नहीं किया-बडे ही गजब की बात है कि, तू अपनी तीनों ही अवस्थाओंमे सुख शान्ति प्रद प्रभु भजन को भूल गया, सदा संसार में ही आसक्त बना रहा, हे मूर्ख, अब तो चेत, "गईसो गई, अब राख रही को" सावधान मनसे तू, गोविन्द भगवान को निरन्तर भजन कर, तेरे तमाम पाप ताप शान्त हो जायेंगे ।

वृद्धावस्थाका दुःख

अङ्ग गलितं पलितं मुण्डम, दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृध्दो याति गृहित्वा दण्डम्, तदपि न मुञ्चत्या शापिण्डम् ॥ भज ॥

हे मूढ- बुद्धि वाले ! तेरे हाथ पैर आदि तमाम अङ्ग गल गये हैं, यानी आखों में गड्ढे पड गये हैं, गाल बैठे हुये हैं, कान आवाज नहीं सुन लेता, और पेट पीठ को लग रहा है, शिरडाढी, मूछ आदि के तमाम बाल रूई के गालेके समान श्वेत हो रहे हैं, मुख दाँतों से रहित पोपला गया है, अब तू वृद्ध होकर काँपता हुआ लकडी टेक टेक कर चलता है, चलते चलते सांस भी फूल जाता है, बडी ही परेशानी भोग रहा है तथापि तू संसारिक भोग विलासकी आशा रूपी फांसी को छोडना नहीं चाहता ? हे मूर्ख ! क्यों आपही अपना शत्रु बन रहा है ? मरने के दिन नजदीक है, अबतो स्थिर मनसे श्री गोविन्द का भजन कर।

भव यातना

पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्, पुनरपि जननी जठरे शयनम् ।
इह संसारे खलु दुस्तारे, कृपया ऽ पारे पाहि मुरारे ॥ भज० ॥

हे मूढ मते ! अनादि कालसे तूने बारंबार असंख्य जन्म लियायानी अनेक ऊंच नीच शरीर धारण किया, असंख्य वार फिर फिर उसी ही भयंकर मृत्युको प्राप्त हुआ, और असंख्य माताओंके दुर्गन्धमय कष्टप्रद उदरों मे सोया, हे मूढ मते ! अब तो तू इस संसार चक्रसे छूटने के लिये उस मुरारि भगवान से प्रार्थना कर कि, हे मुरारि प्रभु ! इस दुस्तर अपार संसार सागरसे मेरा उद्धार कीजिये, मैं एक मात्र आपके ही शरण मे हूँ ! और गोविंद भगवान का भजन कर।

दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिर वसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीड तिः गच्छत्यायु स्तदपि न मुञ्चत्याशा वायुः ॥

क्रमशः वारम्वार दिन होता है, और जाता है-रात होती है, और जाती है-शाम और सुबह होता है, और देखते देखते ही चला जाता है-शिशिर वसन्त आदिक ऋतुएँ वारम्वार आकर चले जाते हैं-इस प्रकार काल भगवान की विचित्र क्रीडा निरन्तर होती रहती है-और इससे आयु वरवाद होता जा रहा है-हाय ! तथापि महान खेदकी वात है-कि, हे मूढ मते ! तू इस तुच्छ संसार की आशारूप पवन को छोडना नहीं चाहता ? अरे मूर्ख ! काल देवता ने तेरा वहुत कुछ तो अनूल्य आयु नष्ट कर दिया, अव वहुत ही थोडा आयु वचरहा है, नसको तो तू सार्थक वना उससे निरन्तर गोविन्द भगवान का भजन कर वहुत गई थोडि रही थोडि तो अवजायँ । पांव परम्पद गई सो गई, रहि सो अव राख ।

जटिलो मुण्डी लुञ्चित केशः काशायाम्वर वहुक्त त वेषः ।
पश्यन्नपि न च पश्यति लोकः उदर निमितं वहु कृत वेषः ॥भज०॥

पेट भरने के लिये कभी तो शिरपर जटाएँ रख कर जटा धारी वना, कभी सिरके सम्पूर्ण वालों को मुंडा कर मुण्डी वना, कभी वालों को नोचवाकर जैन-साधु वना, कभी तो भगवाँ वस्त्र धारण कर सन्यासी वना, इत्यादि अनेक पाखण्ड ढोंग कर अनर्थ कमाता है-मतलव यह है, मनुष्य इस असार संसार की क्षण भंगुरताको प्रत्यक्ष देखता हुआ भी मोह ममतामे फंस कर उसे वह नहीं देखता अतः हे मूर्ख ! तमाम ढोंग छोडकर श्रद्धा पूर्ण निष्कपट मनसे एक मात्र उस गोविन्द भगवान के भजन करने मे कटि वद्ध हो जा ।

वयसि गते कः काम विकारः शुष्के नीरेकः का सारः ।
क्षीणे विते कः परिवारो, ज्ञाते तत्वेकः संसारः ॥ भज. ॥

अवस्था चली जानेपर काम - विकार शक्ति नहीं रहती - पानी सूख जानेपर तालाब नहीं रहती; धन चले जानेपर, परिवार नहीं रहता, जब धन नहीं रहता है, तब परिवार का स्नेह भी कपूर की तरह उड जाता है - अतः हे मूढ मते इस स्वार्थी संसार के पिछे पागल मत बन; और तेरे हृदयसे कामनारूपी डाकिनी पूर्ण तया निकली नहीं है, जब तक उसे डाकिनी का आवेश हृदय से सर्वथा दूर न हो जाय, तब तक आनन्द निधि आत्माका पूर्ण साक्षात्कार नहीं हो सकता - और, आत्म साक्षात्कार के बिना मोह शोककी निवृत्ति भी नहीं हो सकती - (तरति शोक मात्मवित) आत्माको अपरोक्ष जानने वाला शोक नहीं करता - इसलिये हे मूढ मते ! उस गोविन्द स्वरूप आत्मा-का निरन्तर भजन कर जिससे तेरे तुच्छ शोक की निवृत्ति हो जाय -

सर्व परिगृह भोग त्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः ॥ भज ॥

ऐसा वैराग्य किसको निर्मल सुख नहीं देता ? यानी सबको सुख देता है - अर्थात् विरक्त विद्वान पुरुष ही महा सुखी, सर्वथा निर्भय, श्रेष्ठ एवं धन्य है - इसलिये हे मूढ मते ! शुद्ध वैराग्यकी प्राप्तिके लिये उस गोविन्द भगवान् का भजन कर - भगवान् की कृपासे ही मनुष्य विरक्त एवं विद्वान हो सकता है ।

---

५ आत्मा सच्चिदानंद रूप है -

हे शिष्य—तीनो कालो विषे तथा जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति यह अवस्था बदलती है - और आत्मा अबाध्य है - इससे सत् है - तथा मनादिक सर्व संघातके स्वयं रूपता कर जानता है - इसीसे चैतन्य है - परम प्रेमका आस्पद होनेसे आनंद रूप है - ईश्वर व्यापक है - राजाके समान किसी देशमे सभा लगाकर बैठा नहीं - यह वेद और माहात्मा लोगोंकी पुकार है - किसी रीतिसे भी, सत चित् आनंद रूप आत्मासे प्रथक ईश्वरका स्वरूप सिद्ध नहीं हो सकता - जो भिन्न सिद्ध करोगे तो असत्, जड, दुःख रूप सिद्ध होगा - क्यों कि देश काल वस्तु भेदवान पदार्थ अनित्य होता है -

६ मन के साथ युद्ध करे वहीं मनुष्य है-

मन मतङ्ग नहीं चले सुरती के साथ।
दीन माहुत क्या करे अंकुश नहीं हाथ ॥

जो मन के साथ युद्ध करे वहीं मनुष्य है-मनुष्य और पशु एक समान नहीं होता-क्योंकि मनके संयम मनुष्य करता है-और पशु नहीं करता-मनुष्यों का संग्राम मनके साथ होता है-जो मनुष्य मनको जितना ही वश्यमे लाता है, उतना ही महान् पुरुष समजा जाता है-और मनकु सम्पूर्ण कल्पना रहित बनाने पर आत्म विकास होता है-शरीर सबल न होने मन से कौन लडेगा, आहार, निद्रा, भय, और मैथुनके सिवाय

विषयासक्ति मनुष्य तो प्रत्यक्ष पशु नहीं है क्या ? दुर्बल शरीर वालों से आत्म साक्षात्कार नहीं हो सकता-(नायमात्मा बलहीने न लभ्यः)।

७ उत्तम अधिकारी कौन है

जो आप के कल्याण न करे, तो आपके शत्रु आप ही समझो।
यह दूसरे पर शब्द मत रखो ॥

ब्रह्मज्ञान ही जीवका एक मात्र गम्य-अथवा लभ्य स्थान है-और जीवका पारमार्थिक स्वरूप शुद्ध ब्रह्म होता है-पर जब तक अहं ब्रह्म तत्व प्रत्यक्ष नहीं हो जाता- तब तक जन्म मृत्युके पंजर मे छुटकारा पाजाने मे कोई समर्थ नहीं है-मनुष्य जन्म प्राप्त हो जाने पर पुण्य बल से अथवा, महात्माओंकी कृपा से ही मनुष्यों की जिज्ञासा अथवा आत्म-ज्ञानकी लालसा बल्वान होती है-नहीं तो काम कांचनादि बंधनोंसे जकडे-हुए मनुष्यों को कारागृहमेसे छुटकारा पाने की इच्छा ही नहीं होती-स्त्री, पुत्र, धन वैभव आदि मे जिनका चित्त भ्रमण करता है, वह ज्ञानका अधिकारी नहीं है- जो पुरुष सर्वस्वका त्याग करने के लिये तयार है, जो सुख दुःख तथा शोकके चंचल प्रवाह में भी स्थिर रह जाता है, वही आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये यत्नशील होता है- पिंजरेमे से छुटे हुए सिंहके समान संसार के जाल मे से निकल जाता है वही सर्वत्र अधिक है।

तात्पर्य यह है

॥शास्त्राचार्योपदेश शम दमादि सुसंस्कृत मन आत्म दर्शने कारणम्

अर्थ—शम दमादिक साधनोंसे मन शुद्धिके नन्तर जो अधिकारी पुरुष गुरु मुख द्वारा वेदान्त शास्त्रका जिज्ञासा करनेसे आत्म दर्शने कारण होता है ।

८ श्रुतियुक्त अनुभव निवेदन

॥ वेदांता नाम शेषाणामादि मध्यावसान तः ॥
॥ ब्रह्मात्मन्येव तात्पर्य मिति ॥

अर्थ—सर्व वेदांतनका आदि मध्य और अंत तै ब्रह्मात्मा विषै ही तात्पर्य है - वेदके शिरोभागका नाम है - वेदान्त, यह वेदान्त ही ब्रह्म विद्या है - ब्रह्म विद्या ही सर्वत्र सम दर्शन कराती है - ब्रह्म विद्या से ही अज्ञान की गृन्थिया कटती है - ब्रह्म विद्यासे स्वानंद साम्राज प्राप्त होती है - इसलिये उपनिषदोंका गुरु मुख द्वारा अभ्यास करके अपना स्वरूप जानना आद्य कर्तव्य है - और मनुष्य स्वतः आनंद का भण्डार है - शास्वतानंद सबका जन्मसिद्ध हक् है - प्रत्येक मनुष्य मे असीम शक्ति है - केवल प्रयत्न करने और खोजने-की जरूरत है - अमूल्य आत्मानंद धनके त्याग कर संसार की झूटी कौडीयोंके न मिलने पर शोक करना हमको उचित नहीं है - अपने आत्मानंद सम्पत्तीका स्वाद एक बार लेना वहुत ठीक है अस्तु - यह आत्मज्ञानके जो आधिकारी है, वह इतने साधन मे लग जाना चाहिये, सदाचारी, उदार चरित पवित्र, महानुभावोंका सदा संग करो - उस जगन्नियन्ता भगवान्‌में अनन्य प्रेममयी दृढ भक्ति धारण करो - दैवी गुणोंका निरन्तर संपादन

करो - विरक्त, विद्वान, महा पुरुषोंके समीप जाओ, उनके उपदशेका पालन करो, उनके कृपा पात्र बनो, ॐ रूप एकाक्षर ब्रह्मका निरन्तर चिंतन करो, और वेदोंका सर्वोत्तम, शिरो भागरूप, उपनिषदोंके अर्थ साहित उन महा पुरुषोंसे श्रवग करो -

९ यह शरीर ही काशी क्षेत्र है

काशीक्षेत्रं शरीरं त्रिभवनं जठरे व्यापिनी ज्ञानगंगा भक्तिः श्रद्धा गयेयं, निजगुरु चरण ध्यान योगः प्रयागाः विश्ये शोऽयं तुरीयः सकल जनमनः साक्षी भूतोऽन्तरात्मा देहे सर्वंमदीये यदि, वसति पुनस्तीर्थ मन्यत्किमस्ति ॥

अर्थ—अद्भुत रचना वाला यह शरीर ही काशी क्षेत्र है - तीनों भुवनों में ओतः प्रोत रूपसे व्याप्त होकर रहने वाला जो चेतन ज्ञान है, वही श्री गंगाजी है - उस चेतन में अनन्य भक्ति और सात्विक श्रद्धा ही श्री गया तीर्थ है - आत्मज्ञानोपदेशक ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके चरणों का ध्यान ही श्री प्रयाग तीर्थ है - तथा, सकल प्राणियोंके सभी ही मनोंका साक्षीरूप निर्विकार जो तुर्य अन्तरात्मा है, वही श्री काशी विश्वेश्वर है - इस प्रकार जब मेरे देहरूपी काशीमे ही सब असली तीर्थ बसते हैं, तब मुझे अन्य स्थूल [नकली तीर्थोंकी क्या आवश्यकता है]

प्रश्नः—तब क्या प्रसिद्ध काशी आदि तीर्थ, तीर्थ रूप नहीं है?

उत्तरः—लौकिक काशी आदि स्थूल तीर्थ, संसारासक्त मनुष्यों के लिये तीर्थरूप है - यह सन्मार्गमे प्रवृती के लिये है - विरक्त, विद्वान, उन तीर्थोंसे सन्तुष्ट नहीं होते -

१० क्रोध अपना वैरी है

काम एष क्रोध एष रजो गुण समुद्भवः

महाशनो महा पाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥

अर्थ—रजो गुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है - यह अग्निके सदृश भोगोंसे न तृप्त होने वाला और बडा पापी है - इस विषयमे इसको ही तू वैरी जान - याद रक्खो राक्षस अन्यके रुधिर कूं पान करे है - और क्रोधी अपने अरु अन्यके रुधिर कूं पान करे है और राक्षस निशाचर होनै ते रात्रिमे नृत्य करता है - अरु क्रोधी रात्रि दिवस नाचता है. और राक्षस अन्यकूं भय करता है। अरू क्रोधी अन्यकूं अरू आपकूं आप करि भय करि भय करता है यातै क्रोधी पुरूष क्रूर है. ऐसा राक्षस क्रुर नहीं और अन्यकूं ताडन दुर्वचन वाला यह क्रोध धर्म यश और अर्थ (धन) का नाश करै है. इसलिये यह वडा शत्रु है. अपने शान्ति बिगाडने वाले कोप रूप शत्रु को त्यागने का अवश्य है। यह क्रोधादिक संसार अत्यंत निवृत्तिब्रह्मज्ञान बिना होवै नहीं देव जो स्वयं प्रकाश ब्रह्मताकूं जानिके सर्व बंधन करि मुक्त होवै है।

११ तत्वज्ञान में स्त्रियोंके अधिकार

यथें मां वाचं कल्याणी मां वदानि जनेभ्यः ।

ब्रह्म राजन्याभ्याँ, शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥

(यजु. अ. २६।२)

अर्थ——परमेश्वर कहता है कि, (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्योंके लिये (इमांम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने हारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो।

यहां कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्दसे द्विजों का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि स्मृत्यादि गृन्थोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही के वेदोंके पढने का अधिकार लिखा है - स्त्री और शूद्रादि वर्णों का नहीं ?

अच्छा, शास्त्रमें कहाँ लिखा है कि, कन्याये, ज्ञान भक्ति की अधिकारिणी नहीं हो सकती - भारतकी अवनतिका जब प्रारंभ हुआ और ब्राह्मणोंने अपने अतिरिक्त और सबको वेदाध्ययन के लिए अनधिकारी ठहरादिया तभी स्त्रियोंके अधिकार छीन लिये गये . नहीं तो वैदिक युगमे, उपनिषद युगमे तो स्पष्ट देख सकता है कि, मैत्रेय और गार्गी सदृश प्रातः स्मरणीय स्त्रियां ब्रह्म चर्चामे सब ऋषियोंके अधिकार को भी सुशोभित किया था - सहस्रो वेदज्ञ ब्राह्मणोंकी सभामे गार्गीने गर्व पूर्वक याज्ञवल्क्य को ब्रह्म चर्चाके लिये आह्वान किया था - यह भूलनेकी वात नहीं - यदि इन सब आदर्श रूप स्त्रियों को आत्मज्ञानका अधिकार था-तो अब उन्हे यह अधिकार नहीं है-यह कैसे कहा जा सकता है ? एक वार जो घटना हो चुकी है वह दूसरी बार भी होने योग्य है-इसलिये नारियों की पूजा करने से ही सब लोग महान् बने है-जिस देशमे जिस समाज मे नारी पूजा नहीं है वह देश, वह समाज कभी भी उन्नत नहीं हो सकता-मनुने कहा है-जहाँ स्त्रियोंका आदर नही

किया जाता-और जहाँ स्त्रियाँ शोकावस्था में ही समय बिताती है-उस संसार की या उस देश के उन्नति की आशा करना व्यर्थ है-इस लिये पहले स्त्रियों को जागृत करो।

१२ देहरूप यन्त्र

देहादभ्यंतरः प्राणः प्राणादभ्यंतरं मनः ॥
ततः कर्ता ततो भोक्ता गुहासेयं परं परा ॥

अर्थः— देह तै भीतर प्राण है। और प्राण तै भीतर मन है। तिस मन तै भीतर कर्ता कहिये बुद्धि है। और तिस बुद्धि तै भीतर भोक्ता कहिये आनंदमय है सो यह परंपा गुहा है। कहिये आत्माकी अच्छादक कंदरा है। तात्पर्य यहै—जैसे पर्वतके कंदरमे एक दिव्य भगवान की प्रतिमा है। परन्तु अंधकार से अच्छादित है। प्रकाश के शिवाय नहीं दीखता। तैसे पंच कौशादिक इस स्थूल देह रूप पर्वत के अंदर मन रूप कंदर में आत्मदेव कोशा के आवर्त से अच्छादित है। सुतराम ब्रह्मनिष्ठ गुरु के अनुगृहसे पंच कोशके विवेक रूप किल्ली द्वारा मनका आवर्णरूप किवाड खोलकर अपना प्रत्यगात्म स्वरूप ब्रह्म का दर्शन (ज्ञान) होवै है अस्तु।

जैसे कपडे की गिरनी में एक अिंजन के आगे हजारो कले जुदे जुदे कामकी चलती है. तैसे एक आत्मरूप अिंजन करके देहरूप गिरनीमे कर प्राण मनादिक जुदी जुदी आप आपने कामकी कला चलती है। सारा देहरूपी यन्त्र चलाने वाला आत्माको जानने से मोक्ष होता है।

१३ स्वरूप ज्ञान

दोहा:—मुक्त अभिमानी है बद्ध, बद्ध मुक्त यह दोनु अबद्ध ।
स्व स्वरूपमें है त्वसिद्ध, बद्ध न मुक्त ॥

वह आत्मा अधिकारी जनोंको अत्यंत समीप है, और अनाधिकारीको उसके समीप होते हुये भी उसका अनुभव नही होता बुद्धिवानको आत्मा बहुत समीप है, मूर्ख सारी आयु सत्सगं में बितावे तो भी कोराका कोरा रह जाता है , जैसे गंगामें पत्थर कोरेके कोरे रह जाते है, इससे यह जगतको स्वप्नवत् मिथ्या जान-और आपको शरीरादि संघातका साक्षी जान-जो कालके भयसे छूटे-शिष्य इस असार संसारको तू अनुभव करने वाला है, और तेरा अनुभव करने वाला कोई नही है, यह जगत् तरंग तुझ चैतन्य समुद्र से हुआ है, तुझे विषे लीन होता है, परंतु चैतन्य एक रस है, जगत रूप कर्मसे अतित है, जो दृश्यमान है तिन सबका तू जीवन रूप है, जैसे तरंगादिको का समुद्र जीवनरूप है, पर तूने आपको भूलाकर शरीर माना है, इससे तू अनेक भ्रमोमें बध्यमान हुआ है, मुक्तरूप तू मुक्ति को भ्रमकर चाहाता है, अपनी पहचान कर जब तू आपको सम्यक् जानेगा तो बंधकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्ति की इच्छा न करेगा उलटा बंध मुक्तिको भ्रमरूप जानेगा ।

—:—

१४ गीता से मुझकु यह निश्चय हुआ

भगवद्गीता एक अनुपमेय उपदेश है-गीता मे अर्जुन और कृष्ण का तो नाम है-वास्तविक जीव और ब्रह्म है-जीव ब्रह्म का अंश है।

॥ ममैवांशो जीव लोके जीव भूतः सनातनः ॥

इस देहमे यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है-इस तत्व को भूल कर संसारिक वस्तुओं को अपना ध्येय मानकर उनके पीछे पागल बनगये, परब्रह्म जीव से कहता है:- (कृष्ण अर्जुन से कहते हैं:-) अर्जुन हटा अपने सामने से माय के परदे को और देख पहचान (अहं ब्रह्मास्मि) मै ब्रह्म हूँ-जग मेरा है-मै जगका हूँ-और मुझ मे ही सब है-तूतो निमित मात्र है-सभी ब्रह्म के रूप है-जीवकी अन्तिम मंजिल तो ब्रह्म है- ब्रह्ममे मिलकर ब्रह्ममय हो जाना-जैसे पानी की एक बूंद सागर मे मिलकर सागर हो जाती है-यह निर्वाण पाना मोक्ष पाना है-यही गीता शास्त्रका सार है।

१५ शरीर मिथ्या है और अपवित्र है.

॥ अत्यन्त मलिनो देहो, देहीचात्यन्त निर्मलः ।
असंगोऽहमितिज्ञत्वा शौचमे तत्प्रचक्षते ॥

हे शिष्यः— यह शरीर स्वप्न के समान मिथ्या और अपवित्र है। तू सत्स्वरूप है जिसने आपको शरीर माना है तिसको नरकते निकसना कठिन है। क्यों कि, रूधिर, मांस, अस्थि मज्जा, मल मूत्र रूप

इस शरीर के अभिमानको ही नरक कहते है। सर्व मलीन वस्तु का यह शरीर मंदिर नरक है। मलीन नरक देह अभिमान रूपी अंध कूपमे पडा है। इसलिये इस शरीर की प्रीतिका त्याग कर शरीर अभिमान ही बीज आवागमनका है। अपने स्वरूप को सांगोपांग जान जो बंध मोक्षके भ्रम से छूटे नहीं तो दुःख होगा इस मलीन शरीर से वैराग्य करना योग्य है हे भगवन वैराग्य और रागका लक्षण कहो, हे शिष्य वैराग्य यही है, जो अपने सच्चिदानंद स्वरूपसे प्रथक् जगत का अत्यन्ताभाव जानना, और राग यही है कि, आप सहित सर्व नाम रूप को सत् चित् आनंद स्वरूप जानना वा असत् जड दुःखमय नामरूप जगत की भावना त्याग के निजात्मामे भावना ही यही राग है। हे भगवन पूर्वोक्त वैराग और रागादिकों का जानना न जानना मनका धर्म है। मुझे निर्विकार चैतन्यका नहीं क्यों कि, जब गाढ निद्रा नाम सुषुप्ति अवस्था होती है, वा समाधि मूर्च्छा होता है, तब मन अपने अज्ञान रूप उपादान कारण मे लीन होता है। तिस कालमे न राग वैरागकी कल्पना है। न बंध, न मोक्ष, न सुख न दुःख न पाप न पुण्यादिक, तात्पर्य– यह है कि, सर्व नाम रूप त्रिपुटी संसार की कल्पना ही नही होती मै चैतन्य तो तिसकालमे भी हूँ जो मेरा पूर्वोक्त धर्म होता तो सुषुप्ति काल में भी मेरे साथ होता इससे अन्वय व्यतिरेक करके जहां मन है तहां ही पूर्वोक्त संसार धर्म है। इससे सिद्ध होता है कि, ज्ञान, अज्ञान, बंध मोक्ष की कल्पना जिसकर सिद्ध होती है, सोई अपना स्वरूप है। इत्यादिक अनेक संधियां है– हे शिष्य जैसे

तुझको स्वप्न आया अनेक प्रकार का प्रत्यक्ष वृतांत देखा, पर जब जागा तब भ्रम जाना: तैसे ही जबतक तू अपने स्वरूप के अज्ञान रूपि निद्रा मे सोया है। तब तक अनेक प्रकार का बंध मोक्षादिक जगत तुझको भासता है जब सम्यक अपरोक्ष बोधरूपी जागृत तुझको होगी, तब जानेगा कि यह जगत भ्रम मात्र है।

१६ आत्म बोध

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान, कुर्वन्त कर्माणि, । भजन्तु देवताः ॥ आत्मैक्य बोधेन विना विमुक्तिर्न सिद्धति ब्रह्म शतान्तरेऽपि ॥

अर्थः—भले ही कोई शास्त्रोंकी व्याख्या करे, देवताओंका यजन करे, नाना शुभ कर्म करे, अथवा देवताओंको भजे, तथापि, जब तब ब्रह्म और आत्माकी एकता का बोध नहीं होता, तब तक सौ ब्रह्माओंके बीत जाने पर भी (अर्थात् सौ कल्प मे भी) मुक्ति नहीं हो सकती है-

तात्पर्यः-भ्रांति निवृत्ति करने के वास्ते वेदान्त शास्त्रका विचार रूप चिंतन ही मुख्य साधन है-अन्य जप, तपादि साधन नहीं, जैसे अंधकार दूर करनेका साधन केवल दीपकका चसाना (जगाना) है-अन्य नहीं- प्रारब्ध करके प्राप्त हुआ-जो सुख दुःख तथा सुख दुःख के साधन- स्त्री, पुत्र धनादि, इष्ट पदार्थ-तथा ज्वरादिक अनिष्ट पदार्थ है-तिनको अनुभव करते हुये भी, हम चैतन्य सम है-इसी समतारूप पुष्पोंकर

नित्य निजात्म देवका, यत्नविना पूजन होता है-मानो हम चैतन्य मनके पास बैठे हुये, निरंतर मन रूप पुजारीकी पुनाके द्दष्टा है- तथा मन रूप पुजारी के भी द्दष्टा है, पूर्वोक्त जितना विचार कथन चिंतन करा है-सो सर्व माया रूप मनका धर्म है-हम चैतन्य इस कथन चिंतन से रहित है-देह रूप घट का ही गमनागमन है-टूटना फूटना है तथा घटमे जल्का शुद्ध मलीन पना है-स्थिर चलन पना है-वास्तव ते जल मे प्रतिविम्च का भी नहीं है तो, मुझ घटाकाश रूप असंग चैतन्य विम्च का पूर्वोक्त कोई भी धर्म कैसे होगा-अर्थात् नहीं है।

१७ आत्म दर्शन से चित्तका लय

भिद्यते हृदय ग्रंथिश्छिद्यंते सर्व संशयाः
क्षीयते चास्य कर्माणि तस्मिन्द्रष्टे परावरे ॥

अर्थः— तिस परावर परमात्माके देखे हुये इस पुरुषका हृदय ग्रंथि भेदन कुं पावती है, और सर्व संशय छेदन होवे है, और कर्म क्षीण होवे है, तात्पर्य यह है कि, चित्तका लय करने के लिये आत्म विचारसे अन्य कोई उपाय नहीं है, यदि अन्य उपायोंसे चित्तका लय होवे तो भी, चित्तः पुन पुनः अपना शिर ऊंचा उठाता है, प्राणायामसे भी चित्तका निग्रह होता है, परन्तु जवतक प्राणका निग्रह जारी रहता है, तव तक ही चित्त निग्रह टिकता है, जब प्राणायाम वन्द किया जाता है, तव चित्त वहिर्गामी होकर, वासनावश्य होता है, चित्त एवं प्राणका जन्मस्थान एक ही है, केवल चित्त निग्रह

करनेमें प्राणायाम सहायक होता है, परंतु इसके द्वारा चित्त का नाश नहीं होता प्राणायाम की तरह मूर्ति ध्यान, मंत्र, जप और आहार, नियम भी सहायक है, और इससे चित्तमें सत्व गुणकी वृद्धि होती है, जो आत्म विचार में सहायक है। चित्त स्थिर करनेके लिये वैराग्यभी एक साधन है।

सर्व वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्य मेवा भयं ॥ १ ॥

संसारमें मनुष्योंके लिये वैराग्यके शिवाय और सब वस्तु भयका कारण है, वैराग्य तो उपनिषदका प्राण है।

१८ अचल स्थिति.

जैसे हिरण्य कशिपु नामक दैत्यका पुत्र प्रल्हाद पितासे अनेक दुःख प्राप्त हुवा भी अपनी निष्ठा तै चलायमान भया नहीं - ऐसे आत्म तत्व विषै स्थिति जो निष्ठा ताकूं पाया पुरुष अनेक मरणांत दुःख न करि - अपनी निष्ठा जो स्थिति है तातै चलायमान होता नहीं, वही ज्ञानी है - तात्पर्य यह है कि, चित्त आत्म रूपमे रहने वाली एक अद्भुत शक्ति है, वही सब वृत्तियोंको पैदा करता है - और लय भी करता है - इस लिये स्वयं विचार ही चित्तका स्वरूप है - विचार बंद हो जानेपर जगत नहीं रहता - जब चित्त आत्म स्वरूपसे बहिर्मुख होता है - तब जगत भासता है.

---

१९ निष्कर्तव्य का लक्षण

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।
न मुमुक्षुर्न वैमुक्त त्येषा परमार्थता ॥

अर्थः—न निरोध है, और न उत्पत्ति है, और न बद्ध है, और न साधक है और न मुमुक्षु है, और न मुक्त है, ऐसी यह परमार्थता है ।

हे शिष्य । सो निष्कर्तव्य के वास्ते दो उपाय है । एक हठयोग है, दूसरा आत्म विचार योग है । आत्म विचार विना आसन, प्राणायाम, ध्यान, समाधि आदि मन, वाणी, कायाके हठ से जो योग करना है, सो हठयोग है ! पर शरीर और शरीर के कर्तव्य मिथ्या है, समाधिसे आदि लेके मल त्याग पर्यंत सर्व कायिक मानसीकादि क्रिया अनात्म धर्म जानना, और मन वाणी के गोचर सर्व को अ सत् जानना और सर्व कर्तव्योंसे रहित आपको स्वतः सतरूप जानना, कोई कर्तव्य कर आपको निष्कर्तव्य नहीं जानना, यही निष्कर्तव्य आत्मयोग है, तात्पर्य यह कि बंध मोक्ष वास्ते, कर्तव्य नहीं क्योंकि, अपना स्वरूप सिद्ध ही है, कर्तव्य बुद्धि ही भ्रान्ति है भ्रान्ति निवृत्ति करनेमें गुरु शास्त्रादि सफल है ।

२० त्यागका स्वरूप

माया मेघो जगन्नीरं वर्ष त्वेव यथा तथा
चिदाकाशस्य नो हानिर्नैवा लाभ इति स्थितिः ॥

अर्थः—जो मायारूप मेघ है, सो जगत्रूप जलकूं जैसे तैसे वर्षावेहु, तिसकरि ब्रह्मरूप मुझ चिदाकाश की न हानि है, वा न लाभ है, यह स्थिति कहिये ज्ञानी का निश्चय है, हे शिष्य- जलसे तरंग भिन्न नहीं जलरूप जानना ही, तरंगों का त्याग है, तैसे नामरूप कर्य कारण, संघातरूप प्रपंच में अस्ति, भाति, प्रियरूप आत्म बुद्धि करनी, वा पूर्वोक्त आत्मासे भिन्न सर्व नामरूपको अत्यन्त अभाव जानना ही, प्रपंचका परम त्याग है एक को गृहण, एकको त्याग करना इसका नाम त्याग नहीं, क्योंकि, जब तक शरीर है, तब तक, हजारो बार अनेको पदार्थोंका त्याग गृहण होता है, कार्यको कारणरूप जानना हीं, परम त्याग है।

२१ स्थितं प्रज्ञका लक्षण

यः सर्वत्रा नभि स्नेह स्ततंत्प्राप्य शुभा शुभम् ॥
नाभि नन्दति न द्वेष्टितस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

अर्थः—जो पुरुष सर्वत्र स्नेह रहित हुआ,उस उस शुभ तथा अशुभ (वस्तुओं) को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है, (और) न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

हे शिष्यः—धन्य वही है, जो शरीर, मन, वाणीकर व्यवहार करते भी विचार से इस दृश्य रूप जगत् को दृश्य कर देखते हैं-जैसी भारवाही बैलादिक पशुओं को, नफे तोटे का हर्ष शोक नहीं होता,

चाहे चंदन सुवर्णादिक उत्तम पदार्थ लादो, चाहे, मलीन पदार्थ लादो, तिसके अभिमानी पुरुष को मात्र, नफे तोटे का हर्ष शोक होता है- अभिमान रहित को कुछ नही होता- जैसे नगर मे कुम्हार के गधोंकी उत्पत्ति नाशमे कुलाल को ही सुख दुःख होता है-नगर वासी राजाको नही-जो राजा हर्ष शोक करेगा, तो मूर्ख बाजेगा, तैसे ही इस देह रूप नगर मे इन्द्रिय रूपी गधोंकि उत्पत्ति नाशमे मन रूपी कुलाल ही हर्ष शोक वाला है-हे शिष्य-तू सम्यक् विचार से देख, तू चैतन्य राजा स्वमहिमामे स्थित है-हर्ष शोकका भागी नही है।

२२ संसार मनो मात्र है

आस्ति भाति प्रिय सिंधुमें नामरूप जंजाल।
लखित्तिहिं आतम स्वरूप निज है तत्काल॥

हे शिष्य—मन वाणीका गोचर जो यह नाम रूपात्मक संसार है सो केवल मनो मात्र है, क्योंकि, जब मन सुषुप्तिमें अपने उपादान कारणमें लीन होता है, तब संसार की गंध भी नहीं प्रतीत होती जो संसार मनो मात्र न होता तो सुषुप्तिमें मनके लीन हुये संसार भासता नहीं इससे जाना जाता है, संसार मनो मात्र है, तूने आपको राम माना है, सो शरीरके अंगोके भिन्न भिन्न नाम है, उसमेसे कौनसी वस्तुका नाम राम तूने माना है जैसे विचार करनेसे यह शरीर असत है, तैसे ही जगतको जान, हे शिष्य- देहाभिमानके साथ ही कर्म धर्म भाक्ति उपासनादिक संसार है, जब देहाभिमान त्यागा, मुक्त हुआ

(अहंकारका नाम बंध है,) अहंकारसे मुक्त सो मुक्त है ईश्वर का प्राप्ति और मुक्तिका पावना अपना पछानना है, परमेश्वर और अपने बीचमें भेद देखेगा तो दुःखसे न छूटेगा, सर्वको आप सहित सर्व ब्रह्मरूप अपना स्वरूप जान, यह दृढ करनेसे बंध मोक्षादि संसार धर्मोंसे मुक्त स्वतः सिद्ध है, मुक्ति के लिये कोई यत्न नहीं, न तुझे चैतन्य आत्माका नाश है, न जन्म है न आना है न जाना है क्योंकि तू भेद रहित पूर्ण सदा निर्भय स्थित है, आपको भूल कर जीव माना है, इससे पुण्य पापादिकोंके बंधनमें पडा है, वास्तव से नहीं कल्पित बंध मोक्षको सत्य मानकर मूल अपना स्वरूप विसारा है, हे शिष्य जैसे सुवर्ण भूषणोंमे व्यापक है, पर विचार करनेसे भूषण कहना मात्र है, यथार्थ सुवर्ण ही है, तैसे अस्ति भाति प्रिय रूप तूही आत्मा है, नाम रूप जगत कहना मात्र, सारांश यहकि बुद्धिमान वही है जो शरीर सहित जगतको मिथ्या स्वप्न इन्द्र जालवत जाने और आपको सत्यरूप आत्मा जाने ।

२३ निदिध्यास

जो मंथुनी काढिले नवनित । ते परतोनी घातले ताकांत ॥
ते ताकेसी होय अलिप्त ! तैसे चित विषयासी ॥

अर्थः—जैसे मथनसे निकलता माखन, फिर छांछ मे रख माखन, उसमे रहता वह अलिप्त तैसे ज्ञानी संसारसे विमुक्त ।

हे शिष्य—नामरूप संसार को दधिरूप जानो, मनको मंथारूप जानो, ब्रह्माकार वृत्तिको रज्जुरूप जानो और सत्, चित्, आनंद रूप

प्रत्येक आत्मा को वृत रूप जानो-इस प्रकार अभ्यास करने से तुझको अपना स्वरूप साक्षात्कार होगा, पुनः इस नाम रूपादिक संसार रूप छांछमे तू प्रत्येक चैतन्य रूप माखन पडा भी एक रूप न होवेगा।

२४ राम कथाका अध्यात्मिक अर्थ

सर्व वस्तु विबे रममाण करने वाला जो पूर्ण आत्मा है वही राम है-इस प्रकार जो जानता है-सोई ज्ञानी है-सो अज्ञान रूपी समुद्र को ज्ञान रूपी सेतु वना के अज्ञान तत्कार्य, जो काम क्रोधादि राक्षस विनको मिथ्यत्व निश्चय रूप धनुष्य से मारकर के निष्कर्तव्यता बुद्धि रूप सीता सहित, प्रारब्धरूपी पुष्पक विमान पर बैठ कर इस संघात रूप अयोध्या मे जीवन्मुक्ति रूपी सिंहासन पर स्थित होवै है- सोई पुरुष राम जानना।

२५ साधन योग

जैसे गोता खोर समुद्रमे डुबकी लगाते समय तह तक चला जाता है, और फिर रत्नादि लेकर वाहर आता है, वैसे ही साधक को भी ज्ञान रूपी सागर मे गहरी डुबकी लगाकर आत्मज्ञान रूपी रत्नको निकाल कर ले आना चाहिये, आओ हम सब लोग उस महान् अध्यात्मिक पथ का अनुसरण कर अपने को अनन्त सुख और शान्ति के सागर मे विलीन कर दें।

---

२६ योगका अधिकारी कौन है

ब्रह्मवित्परमाप्नोति शोकं तरति चात्म वितः ।

रसो ब्रह्म रसं लब्ध्वानंदि भवति नान्यथा ॥

अर्थः—ब्रह्मवित परब्रह्म कूं पावता है-और आत्मवित शोक कूं तरता है-रस ब्रह्मात्मा है-रस रूप ब्रह्म कूं पाय के पुरुष आनंदी होवे है-तात्पर्य यह है ।

अपने आत्माके ढूंढने वास्ते क्रियारूप प्राणायाम योग करना नहीं केवल विवेक द्वारा जानना ही है - जिसका चित्त अति स्थूल है - विचार करनेमे असमर्थ है - तिसके वास्ते स्थूला रूंधती न्याय कर हठ योग है - अन्यके लिये नहीं - हे गुरो ! योग तो सनातन है; आप न मानने से योगका खंडन नहीं होता. हे शिष्य— पंच भूतादिक वस्तु अज्ञान पूर्वक सनातन है - तैसे योग शास्त्र भी संसार अंतः पाती होनेसे सनातन है इससे सर्व शास्त्रोंका तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों को सिद्ध करने वाला तथा सर्व प्रपंचको सिद्ध करने वाला आत्मा ही असली सनातन है - अन्य नहीं, हे गुरो ! प्राणायाम योग करके योगेन्द्र मुक्त हुये है - विना योगके मुक्ति नहीं - हे शिष्य ! नित्य मुक्त आत्माकी मुक्ति योग करने से कैसे होगी ? स्वयं प्रकाशरूप आत्मासे योग की सिद्धि होती है - जो आगे ही स्वरूपसे मुक्त है - सो किसी रीतिसे आपको भ्रम करके अमुक्त माने तिसी भ्रम की निवृ-तिसे मुक्त की मुक्ति होती है - अन्य किसी योगादि अनेक क्रियारूप

साधनोंसे तिसकी मुक्ति नहीं होती - क्योंकि कर्म योगादि भी भ्रमरूप है - जैसे स्वप्नमे राजा निद्रा दोषसे आपको दरिद्र मानता है, परन्तु निद्रा निवृत बिना अनेक योगादि साधनोंसे दूर नहीं होती - अस्तु -

एक साधक षट् मास तक प्राणायाम करके समाधि नाम दशवे द्वारमे प्राण चढाया था (पीछे सरकार से इनाम मांगा) इससे सिद्ध होता है कि, योग एक क्रिया है - करने वाला अच्छा चाहिये, सब हो सक्ता है - देखो नट और नटनी (सर्कसमे) शरीर की कसरत देख कर सबको आश्चर्य होता है - (नित्य अभ्यास का फल है -) परन्तु तिनकी मुक्ति नहीं होती - हाँ जिनोंने सम्यक् रूपसे अपना आत्म स्वरूप जाना है, वे जीवित अवस्था मे ही कृत्य कृत्य हुये है - हे गुरो ! आपकी कृपासे मैंने समझा है कि, न मैं हूँ, न तू है, न जन्म, न मरण, न लोक न परलोक, न गृहण, न त्याग, न बंध, न मोक्ष, एक पूर्ण परमातमा ही है - अस्तु -

मुमुक्ष जन सत् शास्त्र और सद्गुरुकी कृपासे आत्मज्ञान करि, त्रिविध परिच्छेद शून्य अखंड सच्चिदानंदादि विशेषण युक्त सर्व प्रपंचका अधिष्ठान, अविद्या और - ताके कार्य प्रपंच तै रहित और उपाधि कृत जीव ईश्वर के पंच भेद रहित, बंध मोक्ष तत्साधन कल्पना शून्य शुद्ध एक रस परमार्थ तत्व अपने आप कूं यथार्थ जानि के कृतार्थ हो हु.

——

२७ साक्षी अनुभव

यह छोटा लेख मैं लिखनेका यही अवसर पडा कि अनुभवी लोगोंका आत्मज्ञान दृढार्थ करने वास्ते किया अस्तु:

हे महाजनो ! वडा आश्चर्य है, क्योंकि अधुनिक समयमें बहुत विद्वान लोगोंने अपने से भिन्न और दुरस्त हुआ जो ध्रुवा मंगलादि, नक्षत्रोंका दुरबिनादि साधनोंसे देखनेकी चेष्टा कररहे है, परन्तु अत्यंत सामिप्य जो शरीरस्थ आत्मा (आप) की ज्ञान प्राप्ति करनेमें अत्यंत उदासीन करता है, यह क्या कालका प्रभाव है अथवा अज्ञानका प्रभाव है, देव जाने यह देहादिक प्रपंच अनित्य है और आत्मा नित्य है, यह विषय सर्वकूं विदित होने पर भी अपने निज स्वरूप आत्माको विशेष रूपसे साक्षात्कार का अनुभव लेनेमें प्रयत्न शुन्य ही है, इस तुच्छ भौतिक ज्ञानसे दुःख का अत्यन्त विवृत्ती और परमानन्द की प्राप्ति नहीं होती याते जो आत्मज्ञानसे रहीत होकर यह तुच्छ विषयके पीछे दवडना व्यर्थ है, और अति दुर्लभतर मानव देह वृथा त्याग देना लज्जास्पद है, और वेदान्त में हमें निष्णात है, ऐसे समझ कर थोडे लोग मिथ्याभिमान से अपने निज (साक्षी) स्वरूप आत्माको गुरु मुख द्वारा यथार्थ समझता नहीं और उपासक के ध्येय सदृश अपने स्वरूप परोक्ष रूपसे (आपसे भिन्न) समझता है, इतनेमें आप कृतार्थ समझके सर्व प्रयत्नसे शुन्य होकर रहता है, परन्तु प्रयत्न विमुख होने से दुःखका अत्यन्त निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति नहीं होती अस्तु:

त्वंपदके लक्ष्यार्थ रूप जो साक्षी चेतन है यह सर्वत्र व्यापक रूप सामान्य चैतन है, अथवा उससे विलक्षण है, जो सामान्य चेतनको साक्षी समझके अंगीकार करेतो सुखादिक गुण उस सामान्य चेतनसे ज्ञात नाहीं होवे है, और त्री शतक (सृष्टिदृष्टि) वाद में तो सुखाकार दुःखाकार वृत्तियों और रज्जु सर्पादि भ्रान्ति ज्ञान, स्वप्न ज्ञान स्मृति ज्ञान मनो राजादि, यह सब साक्षी भास्य है और शरीरसे वहीर देशमें रहे जो घटाद्यानात्म पदार्थोंमें ज्ञात सत्ता होनेसे साक्षी भास्य कहे है प्रमाण जन्य (चिदाभास) ज्ञानसे कोई भी, विषय नहीं होता इस बातकी गती क्या, और साक्षी सामान्य (चेतन) रूपसे अंगीकार करेतो, पूर्वोक्त साक्षी भास्य व्यवहार सिद्ध नहीं होता किन्तु वह (साक्षी) घटावछिन चेतन सदृश. स्वेतर ज्ञप्ति शुन्य रूपसे अंगिकार करना पडेगा और सामान्य चेतन सर्व देश काल वस्तुयोंमें आधार रूप से रहे तो, भी, अंतःकरण वृत्ती सम्बंध के शिवाय (देशादि) ज्ञान रूप व्यवहारा सिद्ध नहीं होता और अपने स्वरूप भूत आत्माको केवल सामान्य चेतन रूप से कहे तो, वह उपासकके ध्येय सदृश परोक्ष होता है, तब उपासक और विवेकीयोंमें क्या विलक्षण है, कुछ भी नहीं याते विवेकीयोंके ज्ञेय सदा अपरोक्ष है, यह वेदान्त का सिद्धांत है, वह अपरोक्ष कैसा सिद्ध होता है ? तुम तो शुद्ध ब्रह्म अज " दृश्यको प्रकाशी है " यह विषय विचार सागरमे स्पष्ट किया है, और दृष्टा भाव साक्षी चेतनमें रहता है, सामान्य चेतनमें नहीं है, यह अनुभवसिद्ध है, सामान्य चेतनको दृष्टा कहे तो वह सामान्य चेतन सर्व वस्तुयोंके सर्वदा

सम्बध होने तै, तत् स्वरूप आपके (आत्मा) उक्त सर्व पदार्थोंका ज्ञान सर्वदा होना चाहिये परन्तु ऐसा नहीं होता, उक्त साक्षीका सामान्य चेतनसे विलक्षग रूप यह दूसरी पक्ष अंगीकार करे तो विशेष रूप जो चिदाभासका और साक्षीका परस्पर भेद क्या हुआ, अर्थात् कुछ भी नहीं, किंवा चिदा भासको साक्षी कहे तो, तब अविद्यादि पंचक्लेशयोंको और अनित्यादि दोष साक्षी में आता है, जैसे अविद्यादि दोष युक्त चिदाभास शुद्ध ब्रह्ममें एकत्व नहीं होता, तैसे साक्षी भी, एक होना असंम्भव है, तब ब्रह्म अद्वैत कहना हास्यापद है, यातै साक्षी सर्व दोषोंसे रहित शुद्ध ब्रह्म ही है।

२८ अथ साक्षी स्वरूप वर्णन

जैसे सीनेमा रूप चित्र पट में प्रथम पटपर विद्युत्प्रकाश पडता है, तदनन्तर चित्र (पुतली) समुह आकर क्रम रूप से क्रिया करने लगता है, सर्व चित्रों का ज्ञान विद्युत्प्रकाश से होता है, और बाहर (प्रेक्षकों के स्थान मे) अंधकार रहता है, वैसे अन्दर भी, अंधकार रहेतो जिस समय जो चित्र आकर क्या काम करे यह किसीकु कुछ भी मालुम नहीं होता तत्प्रयुक्त वह सब चित्रोंका उक्त विद्युत्प्रकाशसे ही, प्रकाश होता है, उक्त चित्रों का चलन चेष्टा होना यह फोटों में रहे जो मसालेका परीणाम है, विद्युत्से प्रकाश होता है, परीणाम नहीं होता, तैसे अंतःकरण रूप उपाधिमें (पटपर) साक्षीसे प्रकाश पडता है, जिस समय अंतःकरण का जैसे परिणाम होता है,

उस समय उसी वृत्ती मे आरूढ (प्रकट) हुआ जो साक्षी चेतन प्रकाश करता है-और साक्षी परिणाम नहीं होता-परिणाम तो अंतःकरणका है-जैसे अरण्य के त्रणा (घांस) से बडा हाथी आवृत नहीं होता-तैसे साक्षी रूप आत्मा परीपूर्ण रूप होने तै अज्ञान से आवृत नहीं होता-अर्थात् जागृत स्वप्न सुषुप्ति गुण गंयाव था और विस्वादि जीव चतुष्टये, स्थुलादि चार शरीर और उनका विषयों का दृश्यत्व रूप से सदा साक्षी रूप आपको विषय होता है-याते साक्षी रूप जो आप स्वयं प्रकाश रूप से सिद्ध हुआ, व्यापक रूप जो आकाश को अनेक घट उपाधियों से अनेक घटाकाशसा प्रतीत होता है, तौ भी स्वरूपतः एक है-तैसे परी पूर्ण आत्म चेतन परिच्छिन्न रूप अंतःकरणोंका उपाधि मात्र साक्षी अनेक रूप भासता तौ भी, पर स्वरूपतः एक ही है-साक्षी में जो नानत्व है, यह अंतःकरण उपाधि से है-वास्तविक नहीं-सर्व अनात्म पदार्थ अविद्याका परिणाम और चेतन का विवर्त है-और वृत्ति उपहित साक्षी चेतन के साथ विषय चेतन अभेद होने के बाद विषय का अपरोक्ष ज्ञान होता है-अन्यथा नहीं-वृत्ति घटादियों के तदाकार होने के समय वृत्ति चेतन और विषय चेतनका अभेद होकर विषय का ज्ञान होता है-और इस लिये साक्षी, व्यापक स्वयं प्रकाश सिद्ध हुआ यह साक्षी ज्ञान का अनुभव करने वास्ते चित वृत्ति स्थिर और शुद्ध अन्तरमुख होना चाहिये फजूल चर्चा करने से आनंद नहीं मिलता।

चित्त वृत्ति प्रवृतेत यद्यपि ज्ञानीनो वही ।
मोक्षो नहियते किन्तू ब्रह्मानंदो न लभ्यते ॥

अर्थः—वेदान्त शास्त्र श्रवण करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है-ज्ञान से मुक्ति भी मिलती है-परन्तु चित्तवृत्ति अन्तरमुख होने के शिवाय ब्रह्मानंद नहीं मिलता तस्मात् साधक गण साधन चतुष्टय द्वारा वेदान्त श्रवण करना चाहिये ।